एतान्यपि तु कर्माणि संगं त्यक्त्वा फलानि च।
कर्तव्यानीति मे पार्थ निश्चितं मतमुत्तमम्।।६।।

एतानि=ये सब; **अपि**=भी; **तु**=परन्तु; **कर्माणि**=कर्म; **संगम्**=आसक्ति को; **त्यक्त्वा**=त्याग कर; **फलानि**=फलों को; **च**=तथा; **कर्तव्यानि**=करने कर्तव्य हैं; **इति**=ऐसा; **मे**=मेरा; **पार्थ**=हे अर्जुन; **निश्चितम्**=निश्चित; **मतम्**=मत है; **उत्तमम्**=सवश्रेष्ठ।

अनुवाद

हे अर्जुन! इन सब यज्ञ आदि कर्मों को आसक्ति और फल की इच्छा त्याग कर कर्तव्यबुद्धि से अवश्य करना चाहिये, ऐसा मेरा निश्चित मत है।।६।।

तात्पर्य

यद्यपि यह सत्य है कि यज्ञों से शुद्धि होती है, परन्तु इनसे किसी फल की इच्छा नहीं रखनी चाहिए। कहने का तात्पर्य है कि प्राकृत लाभ की इच्छा से किए जाने वाले सब यज्ञों को त्याग देना चाहिए; किन्तु अन्तःकरण को शुद्ध करके आत्म-स्तर पर आरूढ़ करने वाले यज्ञों को नहीं छोड़ना चाहिए। जो कोई साधन कृष्णभावना की ओर अग्रसर करता है, उसे बढ़ाना चाहिए। श्रीमद्‌भागवत में भी कहा है कि जो वस्तु भगवद्‌भक्तियोग के अनुकूल हो, उसे अंगीकार कर लेना चाहिए। यही परम धर्म है। भगवद्‌भक्त को ऐसे किसी कर्म, यज्ञ अथवा दान को करने में संकोच नहीं करना चाहिए, जो भगवत्सेवा में सहायक हो।

नियतस्य तु संन्यासः कर्मणो नोपपद्यते।
मोहात्तस्य परित्यागस्तामसः परिकीर्तितः।।७।।

नियतस्य=शास्त्रविहित कर्तव्य का; **तु**=तो; **संन्यासः**=त्याग; **कर्मणः**=कर्म का; **न उपपद्यते**=योग्य नहीं है; **मोहात्**=मोहवश; **तस्य**=उसका; **परित्यागः**=त्याग करना; **तामसः**=तामस; **परिकीर्तितः**=कहा जाता है।

अनुवाद

नियत कर्म का त्याग कभी नहीं करना चाहिए। अतएव मोहवश उसका त्याग कर देना तामस कहा गया है।।७।।

तात्पर्य

प्राकृत सुख के लिए किए जाने वाले कर्मों को त्यागना तो अनिवार्य है, परन्तु शास्त्र के अनुसार उन क्रियाओं को अवश्य करना चाहिए, जिनसे दिव्य क्रिया के स्तर पर पहुँचा जाता है। उदाहरण के लिए, भगवान् के लिए नैवेद्य बनाना, नैवेद्य का भगवान् को भोग लगाना, प्रसाद पाना, इत्यादि। कहा जाता है कि अपने लिए भोजन बनाने का निषेध है, परन्तु श्रीभगवान् के लिए भोजन बनाने का नहीं । इस न्याय के अनुसार, कृष्णभावना में शिष्य की उन्नति के लिए संन्यासी उसका विवाह भी सम्पन्न